ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-2* Issue-4* May-2017
Innovation The Research Concept

आदिवासी साहित्यिक परिदृश्य में नारी

अमित शुक्ल
सहायक प्राध्यापक,
हिन्दी विभाग,
शा. ठाकुर रणमत सिंह
महाविद्यालय
रीवा, म.प्र.

सारांश

आदिवासी शब्द की उत्पत्ति हिन्दी भाषा के दो शब्द आदि एवं वासी के मिलने से हुयी है, जिसका अर्थ है मूल निवासी। यह शब्द सन् 1930 में आया। वर्तमान समय में आदिवासियों की जनसंख्या 08 करोड़ से अधिक है। वर्तमान परिवेश में आदिवासियों के संपूर्ण साहित्य जगत में आज विमर्शों का दौर है। हिन्दी साहित्य लेखकों नें अपनी कृतियों के माध्यम से आदिवासी आज आदिवासी समाज तमाम संघर्ष और चुनौतियों से घिरा हुआ है। आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व के लिए इतना गहरा संकट इससे पहले नही पैदा हुआ जिनकी समस्याओं, संघर्ष आदि का चिन्तन मनन कर अपने हिन्दी उपन्यासों में व्यक्त किया है। आदिवासी शब्द की उत्पत्ति हिन्दी भाषा के दो शब्द आदि एवं वासी के मिलने से हुयी है, जिसका अर्थ है मूल निवासी। यह शब्द सन् 1930 में आया। वर्तमान समय में आदिवासियों की जनसंख्या 08 करोड़ से अधिक है। वर्तमान परिवेश में आदिवासियों के संपूर्ण साहित्य जगत में आज विमर्शों का दौर है। हिन्दी साहित्य लेखकों नें अपनी कृतियों के माध्यम से आदिवासियों की समस्याओं, संघर्ष आदि का चिन्तन मनन कर अपने हिन्दी उपन्यासों में व्यक्त किया है। आदिवासी हिन्दी साहित्य देश, समाज और विश्व को आदिवासी संवेदना, उनके सुख–दुख, उनकी मुश्किलें, उनके मजबूत पक्षों की जानकारी तो देता ही है साथ ही उनकी संस्कृति के मजबूत तत्वों को मनुष्य में ग्रहण करने व आधुनिक जीवन को उत्कृष्ट बनाने की शक्ति भी प्रदान करता है। आदिवासी साहित्य आदिवासियों के जीवन, समाज और संस्कृति को हाशिये से मुख्यधारा में लाने का सर्वोत्तम प्रयास है। वह अतीत के गर्भ से तिनके बटोरकर अपने इतिहास की नींव रख रहा है। आदिवासियों द्वारा किए जा रहे संघर्ष का बेबाक चित्रण आज के हिन्दी उपन्यासों में देखा जा सकता है। वर्तमान समय में आदिवासी समाज की संस्कृति, रहन, सहन, उनके गीत, दन्तकथाओं, लोककथाओं आदि को ग्रहण कर रहा है। आदिवासी समाज की चिंताओं से संवाद कराने के लिए आदिवासी साहित्य एक सशक्त माध्यम बन चुका है।

मुख्य शब्द : आदिवासी, नारी, साहित्य, वर्तमान, समय समाज, संघर्ष, चुनौतियां, साहित्य,संवेदना,आदिवासी हिन्दी साहित्य,हिन्दी उपन्यास, मुख्यधारा, पहचान,

प्रस्तावना

पौराणिक कथाओं में, महाकाव्यों में ऐसे अनेक मानव समुदायों का उल्लेख दृष्टिगत होता है जो भारत में आर्यों के आगमन से पूर्व विद्यमान रहे, जिन्हें असुर, दस्यु , निषाद , किरात, राक्षस आदि अनेक नामों से संबोधित किया गया। इण्डोनेशिया में इन्हें भूमिपुत्र, अफ्रीका व अमेरिका में प्रीमिटिव अर्थात प्राचीनतम रूप और आस्ट्रेलिया में अनक्षर जनजाति कहा गया। आदिवासी शब्द एक छत्रनुमा पद है जिसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की जाति एवं समूह वालेट्राइबल को रखा गया है जो कि भारत के मूल निवासी होने का दावा करते हैं। आदिवासी शब्द की उत्पत्ति हिन्दी भाषा के दो शब्द आदि एवं वासी के मिलने से हुयी है, जिसका अर्थ है मूल निवासी। यह शब्द सन् 1930 में आया। वर्तमान समय में आदिवासियों की जनसंख्या 08 करोड़ से अधिक है। वर्तमान परिवेश में आदिवासियों के संपूर्ण साहित्य जगत में आज विमर्शों का दौर है। हिन्दी साहित्य लेखकों नें अपनी कृतियों के माध्यम से आदिवासियों की समस्याओं, संघर्ष आदि का चिन्तन मनन कर अपने हिन्दी उपन्यासों में व्यक्त किया है।[1] आदिवासी हिन्दी साहित्य देश, समाज और विश्व को आदिवासी संवेदना, उनके सुख–दुख, उनकी मुश्किलें, उनके मजबूत पक्षों की जानकारी तो देता ही है साथ ही उनकी संस्कृति के मजबूत तत्वों को मनुष्य में ग्रहण करने व आधुनिक जीवन को उत्कृष्ट बनाने की शक्ति भी प्रदान करता है।

हिन्दी उपन्यासों में पुरूष व नारी पात्र दोनो के जीवन संघर्ष, नारी जीवन की पीड़ा, उनकी विवषता, असमर्थता, उदारता, महानता की भवनाओं आदि को बखूबी अपने उपन्यासों में उतारा है। वर्तमान समय में आदिवासी हिन्दी उपन्यास साहित्य ने अपनी एक अलग पहचान बनाली है।[2]

आज आदिवासी समाज तमाम संघर्ष और चुनौतियां से घिरा हुआ है। आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व के लिए इतना गहरा संकट इससे पहले नही पैदा हुआ। जब सवाल अस्तित्व का हो तो प्रतिरोध आवश्यक है। सामाजिक और राजनीतिक प्रतिरोध के अलावा कला और साहित्य के द्वारा भी प्रतिकार की आवाजें उठीं और वही समकालीन आदिवासी जीवन में अनावश्यक हस्तक्षेप किया तो आदिवासी ने उनका प्रतिरोध किया। पिछली दो सदियों में आदिवासी विद्रोह की गवाह रही है। इन विद्रोह से रचनात्मक उर्जा निकली, लेकिन वह मौखिक ही अधिक रहा। संचार माध्यम के अभाव में वह राष्ट्रीय रूप धारण न कर सकी। आदिवासी साहित्य में आयी आदिवासियों की समस्याओं को मूख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है, एक तो उपनिवेश कला में साम्राज्यवाद और सामंतवाद के गठजोड़ से पैदा हुई समस्या और दूसरे आजादी के बाद शासन की जनविरोधी नीतियां और उदारवाद के बाद की समस्या। आजादी के पहले आदिवासियों की समस्याएं वनोपज पर प्रतिबंध तरह–तरह के लगान, महाजनी शोषण, पुलिस. प्रशासन की जातियां आदि हैं। कि आजादी के बाद भारत सरकार द्वारा अपनाए गए विकास में माउल ने आदिवासियों से उनके जल, जंगल, और जमीन छीनकर उन्हें बेदखल कर दिया। इस प्रक्रिया में एक ओर उनकी सांस्कृतिक पहचान उनसे छूट रही है, दूसरी ओर उनके अस्तित्व की रक्षा का प्रश्न खड़ा हो गया है, अगर वे पहचान बचाते हैं तो अस्तित्व पर संकट खड़ा होता है। अस्तित्व बचाते हैं तो सांस्कृतिक पहचान नष्ट हो जाती है। इस प्रकार आज आदिवासियों के समक्ष अनेक चुनौतियां हैं जिनका सामना उन्हें किसी न किसी माध्यम से करना पड़ रहा है। उनका जीवन उनका संघर्ष किसी न किसी रूप में उनके उपन्यास साहित्य में दृष्टिगोचर होता है। भारत का लगभग 29 प्रतिशत भू भाग वनों, पहाड़ों, का है महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, केरल, उत्तराखंड, झारखंड, बिहार, नागालैण्ड, असम, राजस्थान, मणिपुर, त्रिपुरा, पश्चिम बंगाल, आदि राज्यों में बस्तर, अलमोड़ा, कल्लू, हिमांचल, विंध्याचल, आदि अनेक अंचलों में नट, करनूर, गोंड, भील, उरांव कांतकारी, कोल, बारली, संथाल हो, बैगा चुचु बजारा, मिझो नागा, गुर्जर, खासी कोली धोबी, जुआंग आदि अनेक आदिवासी निवास करते हैं। हिन्दी उपन्यास साहित्य पर दृष्टि डालने पर यह स्पष्ट होता है कि हिन्दी उपन्यासों ने अपनी विकास यात्रा में अनेक पड़ाव डाले हैं। तो तिलस्मी ऐययारी उपन्यासों के युग से लेकर आज तक कथानक और नाटक विहीन एवं परिवेश प्रधान उपन्यास तक एक दीर्घ यात्रा तय की है। उपन्यासों की इस यात्रा में हिन्दी के आदिवासी जीवन संबधी उपन्यासों का विशेष योगदान रहा है। देखा जाए तो आदिवासियों पर उपन्यास, संस्मरण, कहानी आदि पहले भी लिखे जाते रहे हैं, पर विगत दो दशकों से हिन्दी कथा लेखकों की युवा पीढ़ी के द्वारा इस समाज की संवेदना को विशेष स्थान मिला है। आदिवासी जीवन संबधी उपन्यास की वास्तविक शुरूआत जगन्नाथ चतुर्वेदी के बसंत मालवी उपन्यास रे हुयी। यह सन् 1899 में प्रकाशित हुआ था। इस उपन्यास में आदिवासी जीवन की कसमसाती हुई जीवनानुभूति को वाणी देने का यह प्रथम प्रयास था। आजादी के बाद आदिवासियों के जीवन का चित्रण करने वाले प्रथम उपन्यासकार देवेन्द्र सत्यार्थी हैं, जिन्होंने रथ के पहिए, सन् 1952 मे म.प्र. की गौड जनजाति के जीवन यथार्थ का प्रामाणिक और संवेदना सिंचित अंकन किया है। फणीश्वरनाथ रेणु ने भी मैला आंचल में प्रकाशित दलित एवं आदिवासी जातियां जों निहायत गरीब अशिक्षित, अंधविश्वासी, और बौद्धिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। इन पर प्रकाश डाला गया है, आज भी यह परम्परा जारी है। वर्तमान समय मे आदिवासी जीवन पर पर केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में भावबोध के तीन स्वर दिखाई देते हैं, पहले स्तर से दया के पात्र बेचारे से आदिवासी हैं, दूसरे स्तर पर शोषित, उत्पीड़ित लेखकीय सहानुभूति के पात्र सरीखे आदिवासी हैं, और तीसरे स्तर पर राजनेता, ब्यूरोकेट, पूंजीपति आदि हैं जो अपनी आदर्शवादिता, सिद्धान्तवादी, व्यावहारिकता और चालाकी से आदिवासियों केहित चिन्तक बनकर उन पर अधिकार बनाए हुए हैं। आदिवासी संवेदना के वर्तमान उपन्यास लेखन में इन तीनों के अतिरिक्त एक और स्तर देखने को मिलता है जहां केन्द्र में नारी और उसकी आधी अधूरी, ठगी सी व्यस्त दुनिया है। उसके अधिकार और सम्मान की लड़ाई व पारिवारिक, सामाजिक अत्याचार का चित्रण उपन्यासों में अपना स्थान रखते हैं। आम आदमी लेखक कहानी, कविता, उपन्यास, नाटक सब में अपनी पीड़ा का इजहार किया है। ऐतिहासिक उपन्यास की ओर दृष्टि करें तो हरिराम मीणा का धूणी तपे तीर किसी आदिवासी लेखक का यह पहला उपन्यास है। इस उपन्यास का पहला संस्करण जनवरी 2008 में आया। यह उपन्यास दक्षिण राजपूताने के मानगढ़ इलाके में आदिवासी नायक गोविन्द गुरू के नेतृत्व में उभरे जन आन्दोलन को अंग्रेजी और सामंती सेनाओं द्वारा कुचल दिया गया। सन् 1913 में आदिवासियों की चल रही शांतिपूर्ण जनसभा पर हमला कर भयंकर कत्लेआम किया गया और डेढ़ हजार से अधिक आदिवासी शहीद हुए। उन्हीं शहीदों की शहादत के रूप से धधकते दस्तावेज के रूप में यह उपन्यास है। आदिवासी लेखकों में पीटर पाल एक्का ने आदिवासी जीवन पर तीन उपन्यास, जंगल के गीत, मौन घाटी और सोन पहाड़ी लिखा है, जिनमे आदिवासी अस्मिता का सवाल मुखर होकर उभरा है। पर आदिवासी लेखक को सिर्फ आदिवासी लेखकों द्वारा लिए जाने के आधार पर देखे जाने से बात नही बनेगी। गैर आदिवासी कथाकारों ने आदिवासी जीवन के संघर्षों पर जो कुछ लिखा है वह अत्यंत महत्वपूर्ण है। आदिवासी समुदाय के संघर्षों के आयाम अत्यंत व्यापक हैं, इतिहास, संस्कृति, आधुनिकता, शहरीकरण, औद्योगीकरण, विस्थापन, पर्यावरण प्रदूषण और उसके खिलाफ संघर्ष को देखना किसी एक कृति के संदर्भ में अत्यंत कठिन है। विद्याभूषण जी ने आदिवासी

अस्मिता और हिन्दी उपन्यास पृष्ठ, 66 में लिखा है– कि राजनीतिक बेचैनी आदिवासी अस्मिता का पर्याय बन गयी है। डूब, पारा, संघर्ष, गगन, घटा घहरानी, धार, मौन घाटी, समेर शेष हैं, पांव तले की दूब, जहां खिले हैं रक्तपलाश और ग्लोबल गांव के देवता जैसी औपन्यासिक कृतियां आदिवासी भारत के नये तापमान और मौसमों से पाठकों को जोड़ती हैं। तेजिन्दर द्वारा लिखा उपन्यास काला पादरी सन् 2002 में इसमे उन्होंने काले यूरोप में बदले भारत के सरगुजा अंचल के आदिवासियों के अतीत और वर्तमान का जैसा सुंदर चित्रण है जो आदिवासी अस्मिता के उदय और भविष्य निर्माण के नए संकल्प और स्वप्न का संकेत देता है। धार्मिक और राजनैतिक रूप से बिल्कुल उदासीन इस अंचल के आदिवासियों को धार्मिक पहचान देने और अपना स्वार्थ सिद्ध करने की संतो और मिशनरी की अमानुष कोशिशों का ऐतिहासिक अध्याय काला पादरी उपन्यास प्रस्तुत करता है। समरवंषी सन् 2010 का सोनम शर्मा का यह उपन्यास आदिवासी की एक अलग भाव भंगिमा को उकेरता है। श्रीप्रकाश का उपन्यास संस्कृरूपतिल्ली की कथा सन् 2006 में लिखा यह उपन्यास मेघालय में वास्तत्य करने वाली खांसी जनजाति के सांस्कृतिक जीवन के विभिन्न पैलुती तहस नहस करने में अपनी महत्व पूर्ण भूमिका निभा रही है। इस प्रकार श्रीप्रकाश ने हिन्दू और इसाइयों द्वारा आदिवासियों के सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन के हस्तक्षेप कर उनके बस्तित्व और अस्मिता से खिलवाड़ करने के प्रयासों का पर्दाफाश किया है। संजीव हिन्दी के एक सशक्त रचनाकार हैं। उन्होंने अपने साहित्य में गरीब, पीड़ित, दलित आदिवासी को केद्र में रखकर अपनी लेखनी चलाई है। उनके अनेक उपन्यास आदिवासी जनजीवन पर आधारित हैं। उन्होंने सावधान, नीचे आग है, धार, सूत्रधार और जंगल जहां, शुरू होता है। जंगल जहां शुरू होता है यह सन् 2000 में लिखा गया लोकप्रिय उपन्यास है। जिसमें बिहार के पश्चिम चंपारण के मिनी चंबल के नाम से विख्यात बीहड़ों में पनपने वाली डाकू समस्या को प्रमुख रूप से चित्रित किया गया है। इस उपन्यास में भ्रष्ट व्यवस्था का खौफनाक चेहरा प्रस्तुत किया है। यह उपन्यास चरित्र चित्रण की दृष्टि से भी अत्यंत सफल उपन्यास है। इसमें सबसे बड़ी विशेषता यह है कि सामाजिक,आर्थिक,राजनैतिक, धार्मिक एवे प्राकृतिक समस्याओं के कारण आम आदमी किस प्रकार अपराध के जंगल में प्रवेश करने के लिए मजबूर हो जाता है। जंगल के फूल उपन्यास राजेन्द्र अवस्थी का लिखा उपन्यास जिसमें गोंड जनजाति की युवतियों की वेशभूषा का सजीव चित्रण हुआ है। सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव का उपन्यास बनवारी में पुलिस द्वारा परहिया आदिवासियों पर किए गए अमानुष अत्याचार का वर्णन हुआ है। इसमें शोषण और व्यवस्थागत विसंगतियों का अत्यंत व्यापक चित्रण सूक्ष्मता के साथ हुआ है। हिन्दी के आदिवासी जीवन और उनके संघर्षों पर लिखे गए 63 उपन्यास जो आदिवासी हिन्दी उपन्यासों के मील के पत्थर हैं– देवेन्द्र सत्यार्थी का लिखा हुआ ब्रहम्पुत्र, रांगेव राघव का कब तक पुकारूं व धरती मेरा घर, कृष्ण चंद्र शर्मा का, रक्त यात्रा, जय प्रकाश भारतीय का कोहरे पे खोये चांदी के पहाड़, वीरेन्द्र जैनन का पार, संजीव का धार, पांव तले का दूब, जंगल जहां शुरू होता है।[3] राजेन्द्र अवस्थी का जंगल के फूल,सूरज किरण की छांव, विनोद कुमार का समर शेष है, मैत्री पुष्पा का अल्पा कबूतरी, श्याम परमार का भोरकाल, श्याम बिहारी, श्यामल का घपेल, मणि मधुकर का पिंजरे में पन्ना, हिमांशु जोशी का सुराज एवं महासागर, जंगल के आस–पास राकेश वत्स। रमणिका गुप्ता का सीता मौसी, हबीब कैफी का गमन, श्रवण कमार गोस्वामी का इंडिया हस्तक्षेप, चक्रव्यूह, शानी जी का कस्तूरी, नदी और सीपियां, सांप और सीढ़ी, शाल वनों के द्वीप। जय सिंह का कलावे, पीटर पॉल एक्का का मौन घाटी, सोन पहाड़ी, बलवंत सिंह का राका की मंजिल, नागार्जुन का वरूण के बेटे, उदयषंकर भट्ट का सागर, लहें और मनुष्य हरिराम मीणा का घूणी तपे तीर, मधुकर सिंह का अनहददढोल, श्याम व्यास का मांदल का दर्द, बटरोही का महर ठाकुरों का गांव, भगवानदास मोरवाल का काला पहाड़, पुन्नी सिंह का सहराना,शिव प्रसाद सिंह का शैलूष, तेजिन्दर का काला पानी सोहन शर्मा का मीणआ काटी, श्रीप्रकाश मिश्र जी का रूपतिल्ली की कथा। रूणेन्द्र का ग्लोबल गांव के देवता, योगेन्द्र नाथ सिन्हा का वनलक्ष्मी, वन के मन में, मनमोहन पाठक करा गगन घटा घटरानी, सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव का वनतरी, जगदीश चन्द्र जी का धरती धन न अपना, राकेश कुमार सिंह का पठार का कोहरा, जो इतिहास में नही, वृन्दालाल वर्मा का कचनार, देवेन्द्र सत्यार्थी का रथ के पहिए, रामदीन पान्डेय का चलती पीटारी, भाल चन्द्र ओझाा का सांवला पानी, गुरूवचन सिंह का वनपाखी, संतोष प्रीतम का पलाश के फूल, सतीशचन्द्र का काली माटी, किशोर कुमार सिन्हा का गाथा भोगनपुरी। उपर्युक्त उपन्यास आदिवासी जीवन को केन्द्र में रखकर लिखे गये हैं, इनमें से अनेक उपन्यास आदिवासी समुदायों के संकट आदिवासी समुदायों के संकटग्रस्त अस्तित्व, के चित्र को उकेरते हैं। आदिवासियों का सामंती शोषण हुआ है, इससे तो इंकार करना मुश्किल है। आदिवासियों के जीवन संघर्ष को केन्द्र में रखकर लिखे गए उपन्यासों में अपनी जमीन पर अधिकार, सोजगार, स्त्री सम्मान एवं कोयले जैसी खनिज संपदा के सामूहिक हित में उपयोग की चेतना से से सम्पन्न संजीव जी का उपन्यास धार आदिवासी समुदाय की बुनियादी समस्याओं के समाधान और धार्मिक बेड़ियों से आजादी के लिहाज से धर्मांतरण पर सवाल उठाता तेजिन्तर का काला पानी, मैत्रीय पुष्पा का उपन्यास अल्मा कबूतरी, अपराधिक घोषित कबूतरा जनजाति की नारी के जीवन संघर्ष पर आधारित है, आदि अनेक ऐसे उपन्यास उल्लेखनीय हैं। हिन्दी उपन्यास का दायरा हिन्दी क्षेत्र के आदिवासी जनजीवन के संघर्ष तक ही सीमित नही है, बल्कि वह हिन्दीतर क्षेत्र के आदिवासियों की पीड़ा को भी सहेजने का काम हुआ है। आदिवासी जीवन पर आधारित उपन्यासों में कथा वैविध्य भरपूर है। देखा जाए तो आदिवासी लेखकों ने अपने लेखन व कृतियों के माध्यम से आदिवासी जनजीवन का अध्ययन व अध्यापन करते हुए समाज को आदिवासी जीवन की समस्याओं और पिछड़ेपन की तस्वीर को अपने उपन्यासों में उभारा है। आदिवासियों के सामाजिक जीवन के विविध पक्षों, रीति–रिवाजों, मेले,

त्योहारों इनके लोकगीत, लोकनृत्य, लोककथाएं, उत्सव विवाहादि के तरीके व सर्वाधिक महत्वपूर्ण इनके हांथ के हुनर लोककलाओं, शिल्प आदि का आकर्षण ही इतना अत्यणिक है कि अनेक विद्वान इनकी संस्कृति का अध्ययन करने के लिए प्रवृत्त हुए बल्कि कठिन परिश्रम से शोध द्वारा अनेक महत्वपूर्ण जानकारियों का संग्रह प्रस्तुत कर एक मिशाल कायम की। आदिवासियों के जनजीवन को अपने उपन्यास साहित्य में स्थान देने का कार्य पुरूष और नारी दोनो ने ही बखूबी से किया है। हिन्दी की प्रख्यात लेखिका महाश्वेता देवी, महुआ मांजी, रणंन्द्र, मैत्रीय पुष्पा ने अपनी रचनाओं में आदिवासी क्षेत्रों में अपने अनुभव को अत्यंत प्रामाणिकता के साथ उकेरा है। हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी अस्मिता की मुखर अभिव्यक्ति हुई है।[4] सन् 1980 के बाद के हिन्दी कृतियों में वर्णित सामाजिक यथार्थ इस बात की पुष्टि करता है कि राजनैतिक बेचैनी आदिवासी अस्मिता का पर्याय अन गई। आदिवासियों को विषय बनाकर हिन्दी में लिखे गए उपन्यासों की श्रृंखला में कुछ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनमे से कुछ तो ऐसे हैं जिन्होंने आदिवासियों के आर्थिक शोषण व राजनैतिक सवालों को अपनी रचनाशीलता का विषय बनाया है और अदिवासियों के प्रति सहानुभूति प्रकट की है। ऐसी रचनाओं का उद्देश्य आदिवासियों की अंदरूनी, राजनैतिक सवालों को सामने लाना है। इस तरह के उपन्यासों में गगन घटा प्रमुख रूप से है। हिन्दी आदिवासी उपन्यासों की श्रृंखला लम्बी है। गोपीनाथ महांती ने परजा, अमृत संतान, दाना पानी राहुर छाया, लय विलय और माटी मटाल जैसे श्रेष्ठ उपन्यासों की रचना की है। माटी मटाल उपन्यास पर इन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार से भी नवाजा जा चुका है। पर परजा और शेष जो उपन्यास हैं उनकी बात कुछ और ही है। परजा नाम की जनजाति पर केन्द्रित महान्ती का यह उपन्यास इस जाति की सहिष्णुता, धैर्य बौर जिजीविषा शक्ति से तैयार उनके जीवन दर्शन तथा जीवन शैली से बाहर निकल कर प्रतिरोध और विद्रोह का आख्यान करती है। आदिवासी समाज की गाथा होकर भी यह एक तरह से समूची शोषित वंचित मानव जाति के आख्यान का रूप लेती है। ग्राम केन्द्रित रचना होकर भी इसमें पूरा उड़ीसा जैसे स्पंदित हो उठा हो। इस उपन्यास को मैला आंचल के समकक्ष रखा जा सकता है। यह उपन्यास एक समुदाय के शोषित जीवन की सच्ची कहानी है। अपने सार आंचलिक व्यौरों, जीवनगत अनुभूतियों और सांस्कृतिक संवेदनाओं के विशिष्ट अंकन के कारण यह उपन्यास समूचित शोषित मानव जाति का कारूध आख्यान क बन गया है। इसी प्रकार बोंडा समाज की आशा आकांक्षा, असफलता और हताशाओं की संवेदना का कथ्य समेटे आदिभूमि उपन्यास का कथानक बीते दशक में विशेष रहा है। प्रतिमा राय ने इस समाज के रहन सहन, रीति–रिवाज, उत्साह और लाचारी को, उनके बीच लगभग एक दशक तक रहकर जाना और समझा। संवेदना का सूक्ष्म अंकन का शिल्प, प्रतिमा राय में अत्यधिक निखरा हुआ है कि पाठकों को भी जैसे प्रत्यक्ष दर्शिता की शक्ति मिल जाती है।[5] उपन्यास के पात्रों के जीवन व्यवहार, सुख–दुख व उत्सव उल्लास को पूरी संजीदगी सच्चाई और साफगोई के साथ चित्रित किया है। झारखंड के मुण्डा उराव आदिवासियों के जीवन का संवेदनशील कथ्य और शिल्प दोनो दृष्टि से विशिष्ट और उल्लेखनीय है। इस उपन्यास के माध्यम से राजेश कुमार सिंह नें स्वयं अपने ही अनुकूल भाव संवेदना पर सवालिया निशान लगाया है। राकेश कुमार सिंह जी का उपन्यास पठार का कोहरा में आदिवासी जीवन की धड़कनों को उकेरते हुए उनकी संस्कृति, दशा, दिशा में आए में बदलाव को रेखांकित किया है। इस उपन्यास के नायक पेशे से अध्यापक, संजीव सान्याल हैं। ईमानदारी के कारण उसे स्थानान्तरण की सजा मिलती है। उसे पलामू के जंगल के बीच गजली कोठरी में स्थानान्तरित कर दिया जाता है, जो विफल सरकारी तंत्र से जूझते हुए सदा के लिए समाप्त हो जाता है। इसी तरह आदिवासियों पर लिखा जो इतिहास मे नहीं है एक सशक्त उपन्यास है। इसमे उपन्यासकार का यह कहना है कि 1857 के ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ लड़ाई के दो वर्ष पूर्व ही 1855 में जनजातियों के नायक सिदों, कान्हू, चांद, भैरव, नामक चार सहोदर भाईयों ने अंग्रेजों के शोषण के खिलाफ जुझारू संघर्ष करते हुए उन्हे चुनौती देकर बहादुरी के साथ हूल का नगाड़ा बजाकर प्राणान्तक लड़ाईयां लड़ी, किन्तु ईस्ट इंडिया कंपनी के शासकों ने उसे विद्रोह की संज्ञा देकर इतिहास में कोई जगह न दी। इस प्रकार पठार का कोहरा उपन्यास में कथा हरिल मुरमू और उरांव युवती लाली के प्रेम के ताने बाने से व आदिवासी लोक जीवन और लोक रंग के गाढ़ापन की धड़कनों को समाहित कर एक अच्छा हिन्दी आदिवासी उपन्यास की प्रस्तुति दी गयी है।[6]

आदिवासी हिन्दी उपन्यासों में नारीव नारी लेखन के दृष्टिगत लेखिकाओं व उपन्यासों की संख्या भी अत्यधिक है। सन् 1982 में हिमांशु जोशी का सु–राज, सन् 2000 में मैत्रीय पुष्पा का अल्मा कबूतरी और सन् 2010 में प्रकाशित सतीश दुबे का डेरा बस्ती का सफरनामा इन उपन्यासों में लेखकों नें अपनी खोजी दृष्टि से प्रकाश डालते हुए अपनी सहानुभूतिपरक दृष्टि से आदिवासी नारी की अस्मिता और उसकी विवशता को रेखांकित किया है। हिमांशु जोशी का सु–राज उपन्यास में सूरज, अंधेरा, कांछा ये तीन लघु उपन्यासिकाएं संकलित हैं। सु–राज में कुमाउॅ का पर्वतीय अंचल है। अंधेरा और में हिमालय की तराई में रहने वाले आदिवासी थारूद हैं। शताब्दियों से जिनका शोषण होता आ रहा है। शोषण के विरूद्ध इसमें भी एक सशक्त स्वर है। सुराज उपन्यास शोषितवर्ग एवं थारू जाति का ऐसा दस्तावेज है जो प्रायः सभी आदिवासी क्षेत्रों को प्रतिबिम्बित करता है। जमींदार और पुलिस द्वारा किया गया जाने वाला नारी शोषण इसके केन्द्र में है। आदिवासी नारी अपनी घर, गृहस्थी और दाम्पत्य जीवन यापन करती है। पर ये नारी बाहरी शक्तियों की शिकार होती है। काम वाले आदिवासियों को भगाकर उनकी इज्जत के साथ खिलवाड़ करते हैं। गांव की भोली–भाली आदिवासी लड़कियां इनकी वासना का शिकार बन जाती हैं। धरमू प्रधान का बेटा झन्नू शंखी को मेला दिखाने का बहाना बनाकर जबरदस्ती शहर ले जाता है और उसकी जिन्दगी उजाड़ देता है। शरीर पर नाम

मात्र कपड़े लटकाये शंखी रोती हुई गांव पहुंचती है, और अपनी व्यथा कथा बताती है। डॉ. विनायक का यह कथन उचित ही है उनका यह कहना है कि– आदिवासी समाज दुखी और सताया हुआ है। अनेक व्याधियों से जर्जर है। नारी अन्याय और अत्याचार से पीड़ित है व शोषण से खोखला हो चुका है। इसी प्रकार उपन्यास में चंदरिया, कंचनिया और जामिया इन आदिवासी नारियों के साथ भी बलात्कार होता है और पुलिस उनके साथ तहकीकात के नाम पर अमानुषीय व्यवहार करते हैं। रक्षक ही भक्षक बन जाते हैं। भोले आदिवासी विवश होकर उसे सहते रहते हैं। पुलिस न्याय तो नही करती लेकिन जमींदारों के साथ मिलकर उन पर अन्याय अवश्य करती है। इस प्रकार हिमांशु जोशी ने सुराज उपन्यास में आदिवासी नारी की विवशता का अत्यंत सजीव चित्रण प्रस्तुत कर सोचने पर मजबूर कर दिया है।[7] मैत्रेयी पुष्पा ने भी अल्मा कबूतरी उपन्यास में बुन्देलखंड क्षेत्र में रहने वाली कबूतरा आदिवासी जाति के जीवन यथार्थ के साथ आदिवासी नारी की अस्मिता और विवशता का चित्रण किया है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपमान, विवशता और पीड़ा से लबालब उनकी जिंदगी को जीवंत पात्रों के बदभुत कथा संसार में बदल दिया है। जीविकोपार्जन कोई सम्मानजनक साधन न उपलब्ध होने से इनके पुरूष अपराध कर्म और नारियां देह व्यापार के लिए विवश होती हैं। उपन्यास में कदमबाई जो कबूतरा जनजाति की है, का विवाह मडोराखुर्द के जंगलिया नामक युवक से होता है। वह अपने कारनामों के लिए आस–पास के इलाके में मशहूर है। कबूतरा जनजाति के लोग जमींदार मंशाराम की मेहरबानी से उन्ही की जमीन पर बसे हैं।रोटी, कपड़ा, और मकान के लोभ में जंगलिया मंशाराम का गुलाम बनकर उसके इशारे पर काम करता है। इधर कदमबाई के सौंदर्य से घायल मंशाराम षड़यंत्र रचता है। कदमबाई अपने फरार पति जंगलिया से मिलने के लिए फसल भरे खेत में आती है। लेकिन मदहोशी में मंशाराम उसके साथ संभोग करता है। सच्चाई को जानने वाली कदमबाई मंशाराम से घृणा करते हुए भी उसके गर्भ से खिलवाड़ नही करती। जंगलिया थाने के ठीक उसी समय मारा जाता है। कदमबाई एक बेटे को जन्म देती है, जिसका नाम राणा रखा जाा है। अल्मा राम सिंह कबूतरा की इकलौती बेटी है। अल्मा की तेरह चौदह वर्ष की उम्र में उसके जीवन में राणा नामक नौजवान का प्रवेश होता है। अल्मा प्रेमिका के रूप में भी दिखाई देती है। राणा का साथ उसे मन से नजदीक लाता है। दोनो के मन मे विकसित प्रेम उन्हें इतना पास लाता है कि अल्मा राणा पर एक पत्नी के समान अधिकार जताने लगती है। उसकी यही अधिकार की भावना सभी बंधनों को तोड़कर शारीरिक संबंधों तक पहुंचाती है। अल्मा गर्भवती होती है पर आगे भयावह हादसे से उसे गर्भपात् का शिकार होना पड़ता है। अल्मा और राणा का प्रेम आगे जाकर सिर्फ एक यादगार ही बनकर रह जाता है। रामसिंह के संदिग्ध व्यवहार को देखकर गलतफहमी का शिकार राणाअल्मा को बीच रास्ते मे छोड़कर अनने कबीले पर भाग जाता है। राणा को जब अपनी गलती का एहसास होता है तब तक बहुत देर हो जाती है। पिता राम सिंह द्वारा लिये गये कर्ज को उतारने के लिए अल्मा को गिरवी रखा जाता है। पिता का कर्ज उतारने के लिए वह आगे सूरजभान को बेची जाती है। सूरजभान उसके देह का उपयोग कर बड़े लोंगों को खुश करना चाहता है। अपने साथ घटित अत्याचार अल्मा को स्वीकार नही है। इसके विरोध को दबाने के लिए उसे कमरे में कैद करके रखा जाता है। सूरजभान, कबूतरा समाज की औरतों का उपयोग किया जाता है। यह अहसास दिलाने के लिए उसकी बांह पर अल्मा कबूतरी गुदवाता है, जिसे देखकर वह हर बात को नियति समझकर झेल सके। अल्मा का सौंदर्य ही उसका दुश्मन बनकर उसे पैसे का साधन अना देता है। सूरजभान की कैद में अल्मा बलात्कार की शिकार होती है। अल्मा पर दिन प्रतिदिन होने वाले अत्याचार उसे परिस्थिति से समझौता करना सिखाते हैं। वह कमजोर भावनाओं से खेल करने लगी। हंसी, मुस्कान, प्यार, विश्वास, जैसी चीजें। श्रीराम शास्त्री से संबंध और उनकी हत्या फिर अल्मा का राजनीति में प्रवेश और फिर उसका सत्ता प्राप्त करना। इस प्रकार अल्मा परिस्थितियों से समझौता करते हुए मौके का फायदा उठाकर एक–एक सीढ़ी के माध्यम से सत्ता प्राप्ति का रास्ता बना लेती है। इस प्रकार नारी जीवन पर आधारित मैत्रेयी पुष्पा का उप न्यास अल्मा आदिवासी जाति के जीवन यथार्थ का जीता जागता दस्तावेज प्रस्तुत करता है।[8]

नारी जीवन पर आधारित सतीश दुबे जी का का हिन्दी आदिवासी उपन्यास डेराबस्ती का सफरनामा यह उपन्यास शासन द्वारा अनुसूचित जनजाति में सम्मिलित बांछड़ा समाज मध्यप्रदेश के उत्तर–पश्चिम मालवा क्षेत्र के अगभग 100 किलोमीटर भू–भाग में निवास करने वालों पर लिखा गया है। इससे पहले भी सतीश दुबे ने भील आदिवासियों पर केन्द्रित उपन्यास कुर्राटी सहित साहित्य की अनेक विधाओं में अपनी रचनात्मक प्रतिभा का साक्ष्य प्रस्तुत कर चुका है। इस उपन्यास की आत्मकथा में दुबे जी ने स्पष्ट किया है कि उपन्यास को प्रामाणिक दस्तावेज बनाने के लिए मैने लेखन से पूर्व बाछड़ा समाज में प्रचलित रीति–रिवाजों उनके सामाजिक एवं सांस्कृतिक पहलू का विशद अध्ययन किया दथा साक्ष्य एकत्रित किए। उसके आद ही उपन्यास यह आकार ग्रहण कर सका। कथानक में इन्सेस्टिगेटिव रिपोर्टिंग आधार बनाते हुए प्रभावित स्थान पर पहुंचकर तथ्यों की खोजबीन, विश्लेषण और मूल्यांकन करते हुए तथा कथित सभ्य समाज की दृष्टि में बदनाम और समाज विरोधी प्रवृत्तयों में संलग्न रहकर जीवन यापन कर रहे एक विशेष भूखंड में बिखरे लोगों की मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास इस उपन्यास में किया है। बाछड़ा समाज की अजीबोगरीव जिन्दगी और उसमें व्याप्त कुप्रथा रोंगटे खड़ी कर देने वाली है। सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त अभिशाप को भोगते हुए यहां की महिलाएं कुरीतियों से से उपजी प्रथा के अनुसार देह व्यवहार को करने के लिए बाध्य होती है। इस प्रकार सतीश जी का यह उपन्यास इस समाज में हो रहे नारी दैहिक शोषण का दस्तावेज है। बांछड़ा समाज में नारी का दैहिक शोषण खुले आम प्रथा की आड़ में किया जा रहा है। देह व्यापार की मजबूरी के इस मुद्दे को किसी एक जाति विशेष से जोड़कर नहीं देखा जाना चाहिए। यह

नारी की अस्मिता व जीवन मूल्यों से जुड़ा प्रश्न है। इस प्रकार सतीश दुबे जी का डेराबस्ती का सफरनामा उपन्यास बांछड़ा समाज में प्रचलित नारी देह व्यापार के कारणों एवं उसके प्रारंभ पर अपनी खोजी दृष्टि से प्रकाश डालते हुए अपनी सहानुभूतिपरक दृष्टि से नारी की अस्मिता और उसकी विवशता को रेखांकित करते हैं। इस प्रकार नारी जीवन पर आधारित हिन्दी आदिवासी उपन्यासों की श्रृंखला अनेक उपन्यास लिखे गये पर लोकप्रियता की शिखर पर जिन उपन्यासों ने सफलता पायी उनमें सुराज, मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास अल्मा कबूतरी आदिवासी जाति के जीवन यथार्थ का जीता जागता दस्तावेज प्रस्तुत करता है। इसके अलावा सतीश दुबे का डेरा बस्ती का सफरनामा आदि उपन्यासों में नारी की अस्मिता और उसकी विवषता को रेखांकित करता है।[9]

निष्कर्ष

निष्कर्ष यह है कि आदिवासी साहित्य आदिवासियों के जीवन, समाज और संस्कृति को हाशिये से मुख्यधारा में लाने का सर्वोत्तम प्रयास है। वह अतीत के गर्भ से तिनके बटोरकर अपने इतिहास की नींव रख रहा है। आदिवासियों द्वारा किए जा रहे संघर्ष का बेबाक चित्रण आज के हिन्दी उपन्यासों में देखा जा सकता है। वर्तमान समय में आदिवासी समाज की संस्कृति, रहन, सहन, उनके गीत, दन्तकथाओं, लोककथाओं आदि को ग्रहण कर रहा है। आदिवासी समाज की चिंताओं से संवाद कराने के लिए आदिवासी साहित्य एक सषक्त माध्यम बन चुका है। आदिवासी साहित्य से जुड़े विषयों पर अत्यधिक संख्या में शोध कार्य हो रहे हैं। अनेक पत्र–पत्रिकाएं निकल रही हैं। हिन्दी साहित्य लेखक अपनी कृतियों के माध्यम से आदिवासियों की समस्याओं, संघर्ष आदि का चिन्तन मनन कर अपने हिन्दी उपन्यासों में व्यक्त कर रहे हैं। हिन्दी उपन्यासों में पुरूष व नारी पात्र दोनो के जीवन संघर्ष, नारी जीवन की पीड़ा, उनकी विवशता विषमता, असमर्थता, उदारता, महानता की भावनाओं आदि को बखूबी अपने उपन्यासों में उतारा है। वर्तमान समय में आदिवासी हिन्दी उपन्यास साहित्य ने अपनी एक अलग पहचान बनाली है। आदिवासी जीवन को केन्द्र पर रख कर उनकी लोक संस्कृति , धर्म, दर्शन, आदि का चिन्तन करने में निश्चित ही आज के हिन्दी आदिवासी उपन्यासकार सफल हुए हैं।[10]

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *आदिवासी विमर्श और हिन्दी साहित्य – कुमार वीरेन्द्र, पैसिफिक पब्लिकेशन,दिल्ली, पृष्ठ 2840,56*
2. *इक्कासवीं सदी का कथा साहित्य–सम्पादक, सुरयया शेख, शुभम पब्लिकेशन, कानपुर,पृष्ठ,56, 69, 100*
3. *छत्तीसगढ़ की जनजातियां, डॉ. संजय अलंग मानसी पब्लिकेशन, दिल्ली पृष्ठ,126*
4. *बस्तर लोक कला संस्कृति, लाला जगदलपुरी, विश्व भारतीय प्रकाशन नागपुर, पृष्ठ,54*
5. *आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्लीपृष्ठ,56*
6. *जनजातीय समाज का समाजशास्त्र, धूर्वीर महाजन, विवेक प्रकाशन , नई दिल्ली। पृष्ठ,25*
7. *म.प्र. की जनजातियां– श्री कमल शर्मा एवं शिव कुमार तिवारी। म. प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ, 36*
8. *संवाद शोध पत्रिका, नवंबर 2010, अमित कुमार पाण्डेय वाराणसी, पृष्ठ, 25*
9. *म.प्र. की जनजातियां समाज एवं व्यवस्था– शिव कुमार तिवारी, म. प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ, 36*
10. *स्वयं का सर्वेक्षण एवं निष्कर्ष*